

जाति उन्मूलन संबंधी बच्चन के विचार

डॉ. गीता यादव

ऐसिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग डी.ए.वी. महिला महाविद्यालय कोसली

शोध-आलेख सार - विज्ञान और तकनीक की पराकाष्ठा के युग में भी, भारतीय समाज आज तक अनेकोंनेक अंधविश्वासों और सामाजिक बुराईयों से जूझ रहा है। उनमें से एक है - जाति-प्रथा। समाज के वास्तविक बुद्धिजीवियों, हृदयजीवियों और समाज-सुधारकों को भारतीय समाज में व्याप्त यह बुराई सदा से ही सालती रही। डॉ बच्चन की आत्मकथा के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वे इस कुप्रथा के मात्र दृष्टा नहीं थे, वे भोक्ता भी थे और चिंतक भी थे। वे इस बुराई पर सिर्फ क्षोभ और दुख प्रकट करके नहीं रह जाते, सिर्फ चिंता प्रकट करके भी नहीं रह जाते अपितु चिंतन भी करते हैं और व्यक्तिगत, राजनीतिक और व्यवस्था के स्तर पर समाधान भी प्रस्तुत करते हैं।

मुख्य-शब्द:- जाति-प्रथा, व्यक्तिगत समाधान, राजनीतिक समाधान, सामाजिक समाधान।

मूल प्रतिपादन

भारतीय समाज अपनी संरचना में सदा से ही वर्णाश्रम आधारित रहा है जिसमें किसी व्यक्ति की पहचान उसके गुणों और विशेषताओं की अपेक्षा उसकी जाति, कुल, गोत्र इत्यादि से अधिक होती है। कहने को तो संत कवि कबीरदास कहते हैं-

“ऊँचे कुल कहा जनमिये, जो करनी ऊँच न होय।
कनक कलस सुरई भरा, साधू निंदा सोय।।”

सत्य है, परंतु सत्य यह भी है जो तुलसीदास जी कहते हैं कि-
“समरथ के नहीं दोष गुसाई।”

व्यवहारिक जीवन का सत्य यही है। हमारा अनुभव बताता है कि अधिक समृद्ध कुल, ऊँचे गोत्र और जाति से संबंधित व्यक्तियों के दोष कमतर करके आँके जाते हैं और वे दंडित भी कम होते हैं। समाज के वास्तविक बुद्धिजीवियों, हृदयजीवियों और समाज - सुधारकों को भारतीय समाज में व्याप्त यह बुराई सदा से ही सालती रही। परंतु आश्चर्यजनक रूप से जाति - प्रथा नाम की यह बुराई निरंतर बनी हुई है।

डॉ बच्चन ऐसे ही व्यक्ति थे जिन्होंने जाति - व्यवस्था के दंश को सहा था। वे स्वयं जाति - बहिष्कृत थे क्योंकि उन्होंने एक ऐसे परिवार में भोजन करना स्वीकार कर लिया था, जो स्वयं जाति - बहिष्कृत था। वे स्वयं लिखते हैं- ‘चढ़ती जवानी में, संभवतः सामयिक सुधारवादी आंदोलनों से प्रभावित होकर खानपान, छुआ-छूत संबंधी अपने उदार विचारों को जो व्यवहारिक रूप में देने दिया था उससे चिढ़कर, नाराज होकर मेरे खानदानी चचा लोगों ने भी मुझे और मेरे परिवार को जाति - बहिष्कृत कर दिया था। साथ खान - पान, शादी - ब्याह में शिरकत बंद कर ही दी थी। मेरी पहली पत्नी श्यामा की लाश को काँधा देने को भी न आकर उन्होंने अपने बाँयकाट को ऐसा कटु रूप दिया था जो मुझे और मेरे परिवार के सदस्यों को सालों सालता रहा।’¹ उनकी आत्मकथा में स्थान - स्थान पर भारतीय हिंदू समाज में व्याप्त जाति-प्रथा, उससे संबंधित अन्य विषयों तथा उसके दुष्परिणामों की चर्चा मिलती है। वे लिखते हैं - ‘जाति - व्यवस्था से गठित - ग्रसित भी कहना अनुपयुक्त न होगा - समाज में व्यक्ति और समष्टि के संबंधों पर जब - जब मैंने सोचा है, क्षोभ से भर उठा हूँ। और क्षोभ का सबसे बड़ा कारण है कि - व्यक्ति को समाज के सहयोग की आवश्यकता होती है, अपने साधारण जीवन में भी, अपने दुख में भी। पर व्यक्ति को समाज से यह सहयोग लेने के

लिए बड़ा महंगा मूल्य चुकाना पड़ता है। उसे अपनी स्वतंत्रता समाज के हाथों गिरवी रखनी पड़ती है।²

पर बच्चन इन बुराईयों पर सिर्फ क्षोभ और दुख प्रकट करके नहीं रह जाते, सिर्फ चिंता प्रकट करके भी नहीं रह जाते अपितु चिंतन भी करते हैं और समाधान भी प्रस्तुत करते हैं। हम सब जानते हैं कि अधिकांश सामाजिक बुराईयों और अंधविश्वास की जड़ में है- अशिक्षा। इसके विपरित शिक्षा ही वह जड़ी - बूटी है जो हर प्रकार के नकारात्मक उपदकेमज को बदलने का काम करती है। हम देखते हैं कि उच्चतर शिक्षा प्राप्त किए लोग जाति, वर्ण, सम्प्रदाय आदि विषयों में अधिक उदारवादी और खुली सोच रखते हैं। इसलिए आवश्यकता है - हृदय और बुद्धि के वातायन खोलने वाली श्रेष्ठ शिक्षा की। चूँकि भारत में उसका अभाव है इसलिए सदियों पुरानी सड़ी-गली परंपराएँ आज भी अपने पैर जमाए बैठी हैं।

आजादी के बाद से ही भारत की शिक्षा - प्रणाली संदेह और विवादों के घेरे में रही। शिक्षा - प्राप्ति के लिए भाषाई माध्यम की बात हो या पाठ्यक्रम की, उस पर प्रश्नचिह्न लगते रहे हैं। सरकारों और संस्थाओं का उपेक्षापूर्ण और पक्षपातपूर्ण रवैया साहित्यकारों, विचारकों और शिक्षाविदों को सालता रहा है। यह सुखद संयोग है कि बच्चन साहित्यकार, विचारक और शिक्षाविद् तीनों थे। बच्चन मानते हैं कि - ‘किसी भी राष्ट्र, जाति, समाज के लिए बच्चों को अच्छी शिक्षा देने से अधिक महत्वपूर्ण कार्य की कल्पना मैं नहीं कर सकता। - पर वास्तविकता यह है कि बच्चों को वैज्ञानिक रीति से शिक्षित करने की ओर हमारा ध्यान गया ही नहीं। आजादी के बाईस वर्षों में बच्चों की शिक्षा में निम्न स्तर पर शायद ही कोई परिवर्तन लाया गया है। सरकार ने इस दिशा में कुछ नहीं किया तो पूछा जा सकता है समाज ने क्या किया ?³

समाज ने क्या किया ? यह बड़ा महत्वपूर्ण प्रश्न है क्योंकि जहाँ तक सरकारों का प्रश्न है वे तो खुद जातिगत समीकरणों के आधार पर बनती - बिगड़ती हैं। अपनी आत्मकथा के दूसरे भाग ‘नीड़ का निर्माण फिर’ में बच्चन उन गैर - सरकारी शिक्षण - संस्थाओं पर प्रहार करते हैं जिन्हें विभिन्न जाति, धर्म, वर्ग के लोग चलाते हैं। इस्लामिया स्कूल मिशन, सनातन धर्म, अग्रवाल, जैन स्कूल और कॉलेज आदि जाति और संप्रदाय सूचक संस्थाओं को बच्चन शिक्षण संस्थाओं का एक जाल बताते हैं। अपवादों को छोड़ दें तो इनमें प्रायः संबंधित जाति, वर्ग या संप्रदाय के छात्र पढ़ते और अध्यापक पढ़ाते थे। बच्चन लिखते हैं - ‘ऐसी संकीर्णता देश के लिए एक भीषण रोग है। सरकार चाहती तो इसे दूर कर सकती थी। पर जो सरकार अपने

चुनावों तक इन्हीं आधारों पर लड़ती है उससे क्या आशा की जा सकती है। इतिहास का व्यंग्य तो यह है कि यही सरकार अपने को संप्रदाय-निरपेक्ष प्रजातंत्र घोषित किए हुए है। राजनीतिक दलों में आज रोग से लड़ने की प्रवृत्ति नहीं, रोग से लाभ उठाने की प्रवृत्ति है। परिणाम प्रत्यक्ष है, पार्टियों अपनी स्थितियाँ सुदृढ़ कर रही हैं, देश बिखरता, दुर्बल होता चला जा रहा है।⁴

भारत जैसे देश की समस्या यह है कि यहाँ जाति व्यक्ति के अस्तित्व के साथ जुड़ी हुई है और शर्मा, वर्मा जैसी जातिवाचक संज्ञाएँ शर्मा जी, वर्मा जी जैसी व्यक्तिवाचक संज्ञाओं में बदल गई हैं? बच्चन इस जाति - प्रथा को मिटाने का, मिटाने नहीं तो कम अवश्य करने का बहुत कारगर सुझाव भी देते हैं। वे कहते हैं - 'भारत की आजाद सरकार चाहती तो एक विधेयक से नाम के साथ जाति लगाना बंद करा सकती थी - कम से कम सरकारी कागजों से जाति का कॉलम हटा सकती थी। इसके परिणाम दूरगामी और हितकर होते। पर अभी उसमें कुछ भी क्रांतिकारी करने का साहस नहीं है।'⁵ सच है जो सरकारें बच्चे के जन्म प्रमाण पत्र से लेकर स्कूली दाखिले तक में और स्कॉलरशिप से लेकर नौकरी देने तक के प्रमाण पत्रों में जाति के नाम का अलग कॉलम बनाए रखती हों उससे इस तरह की कोई भी आशा करना व्यर्थ है।

बच्चन की आत्मकथा से स्पष्ट होता है कि वे इन कुप्रथाओं के मात्र दृष्टा नहीं थे, वे भोक्ता भी थे और चिंतक भी थे। व्यक्तिगत आग्रहों और प्रयासों से वे इन घृणित रिवाजों का उन्मूलन करने का हौंसला रखते हैं और उन हौंसलों को अमली - जामा भी पहनाते हैं, यही नहीं राजनीतिक और व्यवस्था के स्तर पर समाधान भी प्रस्तुत करते हैं। सामान्यतः चाहे जन सुविधाओं की बात हों, चाहे बुराईयों को खत्म करने की, चाहे भ्रष्टाचार से लड़ने की, भारतीय मानस में जन भागीदारी का भाव न के बराबर है। आम आदमी व्यवस्था और सरकारों की जिम्मेदारी तय करके अपना कर्तव्य पूर्ण मान लेता है। पर बच्चन की दृष्टि में व्यक्ति, समाज और सरकारें सबकी अपनी - अपनी भूमिकाएँ हैं और अपनी - अपनी जिम्मेदारी। कोई भी इकाई राष्ट्र - निर्माण की अपनी जिम्मेदारी से मुहँ नहीं मोड़ सकती। आलोचना करना सरल है, बुराई करना और भी सरल है, कठिन है तो चीजों को सुव्यवस्थित करना, उन्हें सुंदर बनाना। ऐसे स्थानों पर जब समस्या स्वयं समाज से संबंधित हो, चीजों को व्यवस्थित और सुंदर बनाने तथा स्वस्थ समाज की रचना करने में व्यक्ति - व्यक्ति के योगदान और भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। बच्चन लिखते हैं - 'सामाजिक स्तर पर कोई सुधार हो, इसके पूर्व व्यक्ति - व्यक्ति को निर्भिकता और साहस के साथ आगे बढ़ना होगा।'⁶

इसी निर्भिकता और साहस के साथ बच्चन न केवल जाति - बहिष्कृत परिवार में भोजन कर स्वयं जाति - बहिष्कृत होने का जोखिम उठाते हैं अपितु आने वाले समय में अपने घर की रसोई तक में उन लोगों को स्थान देते हैं, समाज जिन्हें अछूत समझ कर दुत्कारता है। बच्चन लिखते हैं - 'यह संस्कार का प्रभाव था, कि देश के समाज सुधारक नेताओं के उपदेशों का, कि मेरे अपने ही मानवतावादी विचारों का, कि मेरे मन से बहुत पहले ही अछूतों को अछूत समझने की बात बिल्कुल उठ गई थी। जब स्वतंत्र रूप से मेरा अपना घर हुआ तो अक्सर चमार ही मेरे खाना बनाने वाले रहे। - आजकल एक जमादार की लड़की - कमला मेरे घर में काम करती है और कभी - कभी खाना भी बनाती है। मुझे लगता है कि मेरे पूर्वजों ने अछूतों का अपमान करके जो पाप किया था उसका यत्किंचित प्रायश्चित्त मैं कर रहा हूँ।'⁷

२१वीं सदी में भी जब हर दिन दलित विरोधी घटनाएँ सामने आती हैं कि अमुक जगह दलितों के घर जला दिए गए, उनकी बस्ती जला दी गई - साफ पानी वाले कुएँ से दलितों को पानी नहीं भरने दिया जाता - और हद तो तब हो जाती है जब हम देखते हैं कि सिर पर मैला ढोने की घोर अमानवीय प्रथा आज भी बदस्तूर जारी है, तो ऐसे

में बच्चन और भी प्रासंगिक हो जाते हैं, और भी अनुकरणीय हो जाते हैं। बच्चन लिखते हैं - 'इधर मैं सोचने लगा हूँ कि अछूतों के साथ या उनके हाथ का खाना - पीना अथवा उनके लिए मंदिरों का द्वार खोल देना केवल रूमानी औपचारिकताएँ अथवा प्रदर्शन है। - एक छोटा - सा कदम इस दिशा में यह उठाया जा सकता है कि लोग अपने नाम के साथ अपनी जाति का संकेत करना बंद कर दें। जिन दिनों मैं यूनिवर्सिटी में अध्यापक था, मैं बहुत से विद्यार्थियों को प्रेरित करता था कि वे अपने नाम के साथ अपनी जाति न जोड़ें - अपने को रामप्रसाद त्रिपाठी नहीं, केवल रामप्रसाद कहें।'⁸

बच्चन जिसे एक छोटा सा कदम बताते हैं वह वास्तव में भारतीय समाज के लिए सदियों से जीने - मरने का प्रश्न बना हुआ है। ऐसा कदम उठाने वालों की निर्भीकता और साहस की निश्चित ही प्रशंसा करनी चाहिए, उनका सम्मान करना चाहिए ताकि अन्य लोग उनका अनुकरण कर पाएँ। बच्चन 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' के समान मात्र उपदेशात्मक रीति से जीवन यापन नहीं करते अपितु करनी-कथनी एक करते हुए पहले स्वयं उस आदर्श को सबके सामने प्रस्तुत करते हैं, जिसकी अपेक्षा वे दूसरों से करते हैं। वे लिखते हैं - 'अमित को स्कूल में प्रविष्ट कराते समय जो एक और निर्णय हमने लिया वह अधिक महत्वपूर्ण था, कम - से - कम हमने ऐसा समझा। हम जाति से बहिष्कृत थे। हमने सोचा, चलो हम एक नव-परिवार का प्रारम्भ करें। अभी तक 'बच्चन' नाम सिर्फ मेरी पुस्तकों पर छपा था या पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित मेरी रचनाओं के साथ। - अमित के स्कूल के दाखिले के समय हमने 'बच्चन' अपने परिवार के नाम के रूप में स्वीकार किया और उसका नाम 'अमिताभ बच्चन' करके लिखाया गया। - इस प्रकार बच्चन परिवार का प्रादुर्भाव हुआ।'⁹

सच्चाई यह है कि बच्चन निर्मित नव - परिवार ही वसुधैव - कुटुम्बम् की उस आदर्श अवधारणा का आधार हो सकता है नहीं तो जाति, वर्ण और सम्प्रदायों में विभक्त वसुधा भला एक कुटुम्ब कैसे हो सकती है? बच्चन कहते हैं - 'मेरी एकमात्र कामना है कि इस परिवार के लोग हर पीढ़ी में पुरानी रूढ़ियों को तोड़ कर आगे बढ़ने वाले हों, अकेलेपन का बल पहचाने और निर्भीकता से अपने को स्थापित और अभिव्यक्त करें। साथ ही वे उन गुणों का संवर्धन करें जो बच्चों के साथ सम्बद्ध किए जाते हैं।'¹⁰

जैसा कि कहा जाता है कि मीलों लंबी यात्रा एक कदम से शुरू होती है। बच्चन हर सामाजिक कुरीति और मानवता के शोषण के विरुद्ध वही पहला कदम उठाते हुए दिखाई देते हैं जिससे एक स्वस्थ मानव समाज की रचना हो सके। बच्चन एक संवेदनशील और भावुक कवि ही नहीं थे बल्कि एक प्रबुद्ध, जागरूक और विचारशील मनुष्य भी थे। व्यक्ति के रूप में समाज और देश के लिए बच्चन का जो आग्रह और प्रयास रहा, उसे अनदेखा तो किया ही नहीं जा सकता, बल्कि अनदेखा किया भी नहीं जाना चाहिए, आवश्यकता उसे और अधिक उभारने की है ताकि नई पीढ़ी भी उन्हें जान और समझ पाए।

आश्चर्य की बात यह है कि किसी भी तरह की जातीय हिंसा या दलित विरोधी घटना पर हफ्तों तक लंबी पर बिना किसी समाधान के बहस करने वाले न्यूज चैनलों तथा उनमें भाग लेने वाले स्कॉलर, विषय विशेषज्ञ, समाज-सुधारक और पत्रकार कभी भी इस तरह के समाधानों पर विचार नहीं करते। क्यों नहीं वे अपनी पत्रकारिता और विशेषज्ञता द्वारा सरकारों पर इस तरह के कानून बनाने के लिए दबाव बनाते? क्यों नहीं वे जातीय या साम्प्रदायिक हिंसा के मूल में बसी स्व - घोषित श्रेष्ठता की मानसिकता को बदलने के लिए समाज के सामने बच्चन जैसे साहित्यकारों और शिक्षाविदों के विचारों को रखते? जाति - प्रथा संबंधी बुराईयों को समाप्त करने के लिए हमें डॉ बच्चन द्वारा सुझाए गए निम्नलिखित बिंदुओं पर गहराई और व्यापकता से चिंतन - मनन करने की आवश्यकता है-

➤ सरकारें इस तरह के विधेयक पारित करें जिसके अनुसार सरकारी कागजों से जाति का कॉलम हटा दिया जायें।

- सामाजिक और नैतिक जिम्मेदारी समझते हुए शिक्षण संस्थाएं अपने नाम जाति और सम्प्रदाय आधारित न रखें।
- इस तरह का सकारात्मक वातावरण तैयार किया जाये कि जन सामान्य स्वेच्छा से अपनी जाति का उल्लेख न करें।

संदर्भ-ग्रंथ

1. दशद्वार से सोपान तक – बच्चन – पृष्ठ 16
2. नीड़ का निर्माण फिर – बच्चन – पृष्ठ 20
3. नीड़ का निर्माण फिर – बच्चन – पृष्ठ 235-36
4. नीड़ का निर्माण फिर – बच्चन – पृष्ठ 119
5. क्या भूलूँ क्या याद करूँ – बच्चन – पृष्ठ 88
6. क्या भूलूँ क्या याद करूँ – बच्चन – पृष्ठ 88
7. क्या भूलूँ क्या याद करूँ – बच्चन – पृष्ठ 88
8. क्या भूलूँ क्या याद करूँ – बच्चन – पृष्ठ 88
9. नीड़ का निर्माण फिर – बच्चन – पृष्ठ 236
10. नीड़ का निर्माण फिर – बच्चन – पृष्ठ 237